श्री वियोगी हरि ने अपने 'कविकीर्तन' (सं० १९८०) में इसी विषय में एक पद्य लिखा था जिसका आधार गोस्वामी राधाचरण का ही छप्पय था । इस प्रकार आनंदघन जी के जीवन के विषय में निश्चित वृत्तांतों का स्रोत रघुराजसिंह जू की 'भक्तमाल' और राधाचरण गोस्वामी का छप्पय है । दोनों सूत्र जनश्रुति पर आधारित हैं ।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनके जीवनवृत्त के विषय में 'मिश्रबंधुविनोद' तथा 'राधाचरण गोस्वामी का छप्पय' प्रमाण माना है । शुक्ल जी ने इनकी मृत्यु नादिरशाही मारकाट में ही लिखी है । जब नादिरशाह की सेना के सिपाही मथुरा तक पहुँचे तब कुछ लोगों ने उनसे कहा कि वृंदावन में बादशाह का मीर मुंशी रहता है । उसके पास बहुत कुछ माल होगा । सिपाहियों ने इन्हें आ घेरा और 'जर-जर-जर' अर्थात् 'धन लाओ' कहने लगे । घनआनँद जी ने शब्द को उलटकर 'रज-रज-रज' कहकर तीन मुट्ठी वृंदावन कीं धूल उन पर फेंक दी । उनके पास सिवा इसके और था ही क्या । कहते हैं, सैनिकों ने क्रोध में आकर इनका हाथ काट डाला । मरते समय इन्होंने अपने रक्त से यह कवित्त लिखा था—

बहुत दिनान के अवधि आस पास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान को ।
कहि कहि आवन सँदेसो मनभावन को,
गहि गहि राखति ही दै दै सनमान को ।
झूठी बतियानि के पत्यानि ते उदास ह्वै कै,
अब न घिरत घनआनँद निदान को ।
अधर लगे हैं आनि, करि कै पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदसो लै सुजान को ।

एक प्रमाण 'भड़ौवा छंद' है, और अधिक विश्वस्त है । घनआनंद की यह बात कि उन्होंने निंबार्क संप्रदाय में दीक्षा ली और इस संप्रदाय के अंतर्गत वे सखीभाव के उपासक थे और सुजान नाम की कोई वेश्या थी तथा उससे इनका प्रेम हुआ, इसका साक्ष्य 'जस कवित्त' नामक ग्रंथ से प्राप्त घनआनँद संबंधी चार 'भड़ौवा छंद' करते हैं । 'जस कवित्त' ग्रंथ सं० १८१२ वि० का लिखा हुआ है । इसलिये उसके छंदों को कवि के समकालीन होने से प्रामाणिक मानना चाहिए । भड़ौवा छंदों के पूर्व में लिखा है—'कायथ आनँदघन महा हरामजादो हो । सु ब्रज की कटा में आयौ । परंतु अपजस बाको थिर है । ताको वर्णन ।'

इनके जन्मस्थान आदि का कुछ सही पता नहीं चलता । जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने इन्हें बुलंदशहर जिले का बताया है । उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर इनके जीवनवृत्त का यह स्वरूप है—

घनआनँद का जन्म बुलंदशहर जिले के किसी ब्रजभाषा क्षेत्र से मिले हुए कस्बे की धरती में सं० १७४६ के लगभग हुआ । बचपन बिताकर, बाद में दिल्ली गए । ये जाति के कायस्थ थे, कलम के पक्के थे; इसलिये दिल्ली के बादशाह

मुहम्मदशाह रँगीले के 'खास कलम' या दरबार के मीर मुंशी हो गए थे । गायनविद् होने के साथ ही ये प्रेमी जीव थे । घनआनँद अद्‌भुत कलापारखी भी थे । इसीलिये बादशाह के दरबार की वेश्या सुजान पर अनुरक्त थे, क्योंकि वह गायन, वीणावादन एवं नृत्य में निपुण थी । इनकी यह अनुरक्ति गहरी थी और आजीवन रही और इनके काव्यसर्जन की यह मूल प्रेरणा ही बन गई ।

कृतियाँ—घनआनंद की कतिपय रचनाओं का सर्वप्रथम प्रकाशन भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'सुंदरीतिलक' में कराया था । इसके बाद सन् १८७० में उन्होंने ही 'सुजान सतक' नाम से इनके ११६ कवित्त प्रकाशित किए । सन् १८६७ में श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने 'सुजानसागर' का प्रथम संस्करण काशी के हरिप्रकाश यंत्रालय द्वारा प्रकाशित किया । इन्होंने आनंदघन के शब्दों की एक अनुक्रमणिका भी तैयार की थी । वह 'काशी नागरीप्रचारिणी सभा' के 'रत्नाकर संग्रह' में अद्यावधि सुरक्षित है । सन् १६०७ में काशीप्रसाद जायसवाल ने 'वियोगबेलि', 'विरहलीला', नाम की रचनाएँ 'नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित कराई थीं । 'सुजानसागर' में ही कुछ और पद मिलाकर रसखान की कविताओं के साथ श्री अमीरसिंह के संपादन में 'रसखान और घनानंद' पुस्तक नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा सन् १६२६ में प्रकाशित हुई । इसी का संक्षिप्त संस्करण 'घनानंद रत्नावली' नाम से भारतवासी प्रेस, प्रयाग ने भी प्रकाशित किया था ।

सन् १६४३ में लखनऊ के श्री शंभुप्रसाद बहुगुणा ने 'घनआनंद' नामक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें २०५ कवित्त, सवैए, दोहे आदि और ५८ गेय पद हैं । पद्यों का विषयक्रम से विभाजन किया है । उनके अपनी ओर से शीर्षक भी दिए हैं । इसके अतिरिक्त 'वियोगबेलि' के ८१ पद्य और 'प्रेमपत्रिका' के २६ पद्य भी इसमें प्रकाशित हैं ।

कवि की कृतियों के वैज्ञानिक संपादन करने का एकमात्र श्रेय पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र को है । इनके परिश्रम से पूर्व कवि की रचनाओं का दशांश भी प्रकाशित नहीं था । आपने सर्वप्रथम घनआनँद की ४१ छोटी-बड़ी काव्यकृतियों को 'घनआनंद' (ग्रंथावली) नाम से सं० २००६ वि० में प्रकाशित किया । उसकी भूमिका में घनआनंद-काव्य-मर्म का उद्‌घाटन भी किया ।

भाषा—घनआनँद का भाषा पर जैसा अचूक अधिकार था वैसा किसी अन्य कवि का नहीं । भाषा मानों इनके हृदय के साथ जुड़कर वशवर्तिनी हो गई थी । ये उसे अपनी अनूठी भावभंगी के साथ साथ जिस रूप में चाहते थे उस रूप में कहते थे । इनके हृदय का योग पाकर भाषा को नूतन गतिविधि का अभ्यास हुआ और वह पहले से कहीं अधिक बलवती दिखाई पड़ी । जब आवश्यकता होती थी तब ये उसे बँधी प्रणाली से हटाकर अपनी नई प्रणाली पर ले जाते थे । केवल भाषा की पूर्वअर्जित शक्ति से काम न चलाकर इन्होंने उसे अपनी ओर से शक्ति प्रदान की है । आचार्य शुक्ल ने लिखा है—"घनानँद जी उन विरले कवियों में हैं जो भाषा की व्यंजकता बढ़ाते हैं । अपनी भावनाओं के अनूठे रूपरंग की व्यंजना के लिये भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करनेवाला हिंदी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ । भाषा के लक्षक और व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी ।